Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

Jankriti । जनकृति Issue 69-70 । अंक 69-70

आदिवासी कविता में प्रकृति

श्रीलेखा के. एन
सहायक आचार्य,हिन्दी विभाग
कोच्चिन विश्वविद्यालय,केरल
Ph: 8330013928
Sayinith@gmail.com

सारांश

संपूर्ण मानवराशि ने अपने आविर्भाव से ही प्रकृति के कण-कण में व्याप्त समस्त वस्तुओं के प्रति सहचारी भाव प्रकट करते आए हैं। आदिमानव की भक्ति भाव में प्रकृति एक मुख्य हिस्सा थी। किन्तु आधुनिकता की संकल्पना ने हाशियेकृतों की धारा के अंतर्गत प्रकृति को भी शामिल कर दिया। मनुष्य के कुकर्मों के परिणाम स्वरूप प्रकृति में आए परिवर्तन ने आदिवासी जनजातियों के जीवन को भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित किया। इसका यथार्थ चित्रण हिन्दी के आदिवासी जीवन पर आधारित कविताओं से प्राप्त होती हैं। इन कविताओं के माध्यम से कवियों ने प्रकृति में घुलमिलकर जीवन बिताने वाला आदिवासी समाज,आदिवासी और प्रकृति के बीच का अटूटा संबंध,उनकी पारिस्थितिक सजगता, ,प्राकृतिक सुषमताओं को बनाए रखने के लिए संघर्षरत जनता और प्रकृति के शोषण से संपूर्ण आदिवासी समाज का त्रासदीपूर्ण पतन आदि को मुख्य विषय का रूप प्रदान किया है। प्रकृति केन्द्रित आदिम दृष्टि सबकी बराबरी की माँग करने वाली है।

बीज शब्द : *आदिवासी,स्त्री,प्रकृति,जंगल,मानव*

भूमिका

हिंदी के प्रत्येक आदिवासी साहित्यकारों की रचनाओं में प्रकृति एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरकर आती है। इसका मुख्य कारण आदिवासियों के जीवनयापन में निहित प्रकृति की प्रासंगिकता है। इसलिए आज आदिवासी जीवन पर बात करते वक्त या उस पर कुछ लिखते वक्त प्राकृतिक दर्शन को शामिल करके देखना अनिवार्य बन गया है। प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है। क्योंकि प्रकृति शोषित होने पर मनुष्य का जीवन भी दुस्साहसपूर्ण बन जाता हैं। इसलिए जंगलों की ओर लौटना वर्तमान में और भविष्य में एक महत्वपूर्ण बात बन गया है। यहाँ आदिवासी जीवन के कुछ ऐसे पक्षों पर विचार किया गया है जहाँ प्रकृति उनके साथ सहभागिता की भूमिका निभाती है और उसी के साथ शोषित हो जाती है। इसका मुख्य कारण मनुष्य की शोषण दृष्टि है।

आदिवासी अपने सामाजिक जीवन में प्रकृति को अलग करके नहीं बल्कि निकट से देखता-परखता है। इसलिए प्रकृति के साथ उनका संबंध आदि,मध्य और आधुनिक समय तक बने रहते है। वे साहित्य सृजन के द्वारा अपने समाज को अस्मिता के पड़ाव की ओर ले जाते है जहाँ प्रकृति भी उनकी दृष्टि

में सहचारी है। जल,जंगल और ज़मीन को साथ लेकर बहना आदिवासी साहित्यिक परंपरा का मूल सिद्धान्त है। आदिवासी लेखन में मुख्यतः पेड़,जंगल और पहाड़ जैसे कई प्राकृतिक वस्तुएँ प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करते हुए उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं ,इससे यह बात सच साबित होती है कि प्रकृति ही उनके जीवनयापन का केन्द्रीय तत्व है।

आदिवासी साहित्य में प्रकृति मानव के समान शोषित होने का चित्रण देखा जा सकता है। इन कविताओं के द्वारा कविगण अपनी संवेदना को सहजीवी प्रेम का नाम देकर उसे एक साथ ले जाने की निरंतर प्रयत्न में हैं ,वर्तमान आदिवासी जीवन केन्द्रित कविताओं में अभिव्यक्त ‘ प्रकृति प्रेम ’ इसी का ही परिणाम है। प्राकृतिक सुषमाएँ नष्ट हो जाने से आदिवासी जीवन भी समस्याग्रस्त हो जाता हैं। इसलिए आदिवासी साहित्यकारों की अधिकांश कविताएँ जंगल और ज़मीन से बिछुडकर रहने की व्यथा को प्रस्तुत करने वाली हैं। प्यारी टूटी की कविता **‘ पर्यावरण ’** इसी दर्द को दर्शाती है। वे लिखती है :-

“ हे पहाड़ देवता

हे नदी माता

हे जंगल राजा

पहाड़ टूट गए

नदी सूख गई

जंगल कट गए

किसकी मैं पूजा करूँ

किससे मैं प्यास बुझाऊँ

किसकी मैं सेवा करूँ

पहाड़ की आड़ में थी

नदी की धारा में खेली

जंगल के फलों में पली

हवा का रूख बदल गया

नदी की धारा कट गई

जंगल वीरान हो गया

मैं अनाथ हो गई।

मैं प्यासी हो गई

मैं भूखी रह गई। ”1

इस कविता में प्रकृति की अनुपस्थिति में कवयित्री का मन किस प्रकार कुंठा और निराशाग्रस्त हो जाती है इसी का चित्रण है। यहाँ एक सजग मनुष्य ही नहीं बल्कि एक छत के नीचे अपनी संस्कृति और समाज को बनाए रखने के लिए संघर्षरत एक यथार्थ मानव का रूप भी देखा जा सकता है। प्रकृति से बिछुडकर लेखिका पूरी तरह टूट जाती है। उसी प्रकार इस टूटन की वेला में प्रकृति में निहित हर चीज़ अपनी पहचान खो देती है।

पारिस्थितिक संतुलन को नष्ट करने वाले कई चीज़ें हैं। यह मिट्टी,जल और वायू को प्रदूषित करते हुए मनुष्य के जीवन को और अधिक संकटपूर्ण स्थितियों के बीच धकेल देते है। इसका परिणाम इन वस्तुओं का पतन हैं,जो धीरे-धीरे इस धरती के संतुलन को भी नष्ट कर देती है। सुषमा असुर की कविता ‘ **पहाड़ का घर खतम हो गया है** ’ में प्रकृति अपने सभी अंगों को खोकर रोती रहती है और उनकी वेदना में असुर आदिवासी जनता भी व्याकुल हो जाते है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं : -

“ पहाड़ रो रहा है

नदी सिसक रही है

रो रहे हैं झारखंड के झरने

धरती-पहाड़ सब रो रहे हैं

रो रहे हैं असुर सारे

झरने में पानी नहीं है

पहाड़ में फूल फल नहीं है

नदी में बहने के लिए पानी नहीं है। ”2

यहाँ सब अपनी नियती को कोस कर और मनुष्य के कुकर्मो का परिणाम भोगकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में रोते रहते हैं। झरने में पानी,पहाड़ की शोभा बढ़ाने वाले फल-फूल और नदी में

बहने वाला पानी सब गायब है। धरती इन सबकी अनुपस्थिति में रो रही है। कवयित्री का कहना है कि प्रकृति की मृत्यु मनुष्य के विनाश का ही सूचक है।

रामदयाल मुंडा ने भी अपनी कविता ‘ **विरोध** ’ में नदी प्रदूषण की समस्या को अभिव्यक्त किया है। कविता की पंक्तियाँ नदी के अंतिम क्षण की वाणी को रेखांकित करने वाली हैं : -

“ उसे बाँधकर ले जा रहे थे

राजा के सेनानी

और नदी

छाती पीटकर रो रही थी

लौटा दो,लौटा दो

मुझे मेरा पानी। ” 3

प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति ने मनुष्य के जीवन धरातल को प्रभावित किया। इसलिए प्राकृतिक वस्तुओं की तुलना में वे कृत्रिम पदार्थों की ओर मुड़े, यह प्रकृति के संतुलन की गति में बाधा डाली। यहीं नहीं मनुष्य ने कूड़ा-कचरा फेंककर और प्लास्टिक जैसे ज़हरीली पदार्थों से प्रकृति के सौंदर्य को भी नष्ट किया। आज मनुष्य अपने जीवन में सफलता की खोज करते हुए जिस स्तर तक पहुंचा है वहाँ प्रकृति एक उपभोग वस्तु बनकर मनुष्य के स्वार्थ भावों की पूर्ति कर रही है। मानवराशि की इस विकास यात्रा में प्रकृति की त्याग और कुर्बान की आवाज़ें मौजूद हैं। ‘ **अघोषित उलगुलान** ’ नामक कविता में अनुज लुगुन ने मनुष्य की इस नकारात्मक प्रवृत्ति का भोज उठाने वाला आदिवासी समाज का ज़िक्र किया है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

“ बोलते हे लोग केवल बोलने के लिए

लड़ रहे हैं आदिवासी

अघोषित उलगुलान में

कट रहे हैं वृक्ष

माफिया की कुल्हाड़ी से

और बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल

दान्डू जाये ,तो कहाँ जाये ?

कटते जंगल में

या

बढ़ते जंगल में ? ” 4

कवि ने इस कविता में ऐसी एक सच्चाई का पर्दाफाश किया है जहाँ प्रकृति और आदिवासी एक ही समय में , एक ही समस्या के बीच पड़कर सही रास्ता खोज रहे है। कंक्रीट के बड़े-बड़े मकानों से युक्त इस जीवन परिवेश में न आदिवासी का कोई अस्तित्व है या न प्रकृति की कोई भूमिका। वंदना टेटे द्वारा संपादित ‘ **कवि मन जनी मन** ’ नामक पुस्तक की भूमिका में प्रो. रोहिणी अग्रवाल ने प्रकृति को बचाने की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार - “ बचाना है जल-जंगल और ज़मीन को तमाम प्राकृतिक सम्पदा और सौंदर्य के साथ ताकि नदियों और झरनों से पानी न छिन पाए और धरती माँ की गोद से ‘ बाघ,वराह,भूत-दरहा ,गौरैया,भूवा,चोरदेंवा,गुतरू ’। नहीं तो क्या पता माँ बनकर सबको पालती धरती कातर प्रणयिनी बनकर भीतर ही भीतर सूखने लगे कि मेरा जूड़ा बहुत सूना लगता है संगी,सरहुल के फलों के बिना। ”5

आदिवासी अपने भूतकाल को ही नहीं बल्कि वर्तमान और भविष्य के प्रति भी सतर्क रहने वाला है। इसलिए परंपरा के साथ ही वे भविष्य निर्माण की संकल्पना को भी आगे ले जाते है। साथ ही पारिस्थितिक समस्याओं के दुष्परिणामों से वर्तमान युवापीढ़ी किस प्रकार तड़पती है या उनके भविष्य में बाधा डालने वाली समस्याएँ क्या-क्या हैं आदि पर भी इस कविता में गहराई से विचार हुई है। इस सच्चाई से आदिवासी जनता काफी हद तक परिचित है कि - मानवराशि की विकास यात्रा का अगला चरण उनकी अनुपस्थिति ही रहेंगी। इसलिए वे वर्तमान समाज को चेतावनी देते हुए बताना चाहते है कि ‘ तुम्हारी पीढ़ी के सुनहले भविष्य तुम्हारे हाथों में ही सुरक्षित है ,इसलिए कर्म का फल जानकार ही आगे बढ़ो ’। इस कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

“ एक बूंद पानी के लिए

तड़प-तड़प जायेंगी

हमारी पीढ़ियाँ

इसलिए

मैं सच कहती हूँ

हे समय के पहरेदारो !

तुमने अवश्य सुना होगा

एक वृक्ष की जगह

लगाओ दूसरा वृक्ष

क्या कभी सुना है

एक पर्वत के बदले

उगाओ दूसरा पर्वत ? " 6

(हे समय के पहरेदारो !,ग्रेस कुजूर,)

आदिवासी संस्कृति की शुरुवात जंगलीय परिवेश में विकसित है। इसलिए मिट्टी की महक और प्रकृति का ताल बोध से वे अपनी रचनाओं को एक ऐसे धरातल पर ले जाती है जहाँ प्रकृति से अलग होना उनके लिए काफी मुश्किल है। ग्रेस कुजूर ने अपनी कविता **' गाँव की मिट्टी '** में ज़मीन से जुड़े रहने की अधक इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया है :-

" पगडंडियों से होकर चलते वक्त

पाँवों से लिपटी

गाँव की मिट्टी ने कहा था –

रहने देना चरणों में यह धूल

शहर की कोलतार भरी सड़कों पर

चलते वक्त

यह बचाएगी तुम्हें

कालिख चिपकने से। "7

आदिवासियों की जीवन की पृष्ठभूमि जंगलीय वातावरण होने के नाते वे प्रकृति के समस्त पदार्थों से परिचित हैं। इसी कारण से मुख्यधारा ने उन्हें ' वनवासी ' कहकर समाज के हाशिये तक सीमित कर दिया गया है। समकालीन समय में तो आदिवासी जंगल तक सीमित नहीं है। गाँव,शहर,बस्ती और गलियों में भी वे लोग रह रहे हैं। किन्तु उनकी समस्याएँ समाधान ढूँढ़ने में असमर्थ हैं। हँसी और मज़ाक के बीच अपनी पहचान को स्थापित करना आदिवासियों के सम्मुख उपस्थित सबसे बड़ी चुनौती है। महादेव टोप्पो की कविता **' आप क्यों हँसते हैं** ? ' में मुख्यधारा को संबोधित करते हुए और उनके इस व्यवहार के प्रति व्यंग करते हुए कवि लिखते है :-

" आप क्यों हँसते हैं ?

आइये,यहाँ आइये

जंगल का यह कौन-सा पत्ता है ?

कौन-सा पेड़ है ? बताइये..

जानिये ,फुटकल भी दवाई है,ब्राह्मी बूटी भी

और भी ऐसी अनेक औषधियाँ हैं जंगल में

क्या आप बता सकते हैं यह

इनके पत्ते देखकर

या इनकी जड़े सूँघकर ? "8

पृथ्वी के प्रति आदिवासी समाज की दृष्टि सदैव मातृप्रेम की रही है। इसलिए उनके अनुसार – ' धरती माँ है और वे उनका पुत्र है '। कभी - कभी स्त्री और प्रकृति को एक ही स्तर पर रखकर उनकी समस्याओं के कारणों को ढूँढने की प्रवृत्ति आदिवासी साहित्यिक जगत में सशक्त रूप से देखा जा सकता है। जसिन्ता केरकेट्टा की ' **प्रकृति और स्त्री** ' नामक कविता इसका उदाहरण है। इस कविता में भारतीय समाज या संस्कृति में स्त्री और प्रकृति के प्रति प्रचलित भक्ति भाव और बाद में पुरुष केन्द्रित अधिकार सत्ता के आगमन से दोनों की स्थितियों में आए परिवर्तन आदि को मुख्य मुद्दे के रूप में रखा गया हैं।

कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

" सदियों से तुम डरते रहे प्रकृति से

सोचकर

वह है सृजन के साथ विनाश की भी देवी

तुम उसे कभी समझ नहीं पाए

जैसे

कभी समझ नहीं पाए तुम स्त्री को

औजार और सत्ता हाथ में आते ही

पहले किया प्रकृति को तबाह

करने को उस पर एकछत्र राज

कभी न सुनी स्त्री की आह

सृजनशीलता की जादुई डिबिया में बंद

कैद रह गयी हमेशा उसकी आवाज़। ” 9

आज समाज में स्त्री और प्रकृति दोनों शोषण और गुलामी मानसिकता से मुक्त नहीं हैं। पुरुषवर्चस्ववादी दृष्टि ही उनके अस्तित्व को लुटानेवाले है। इस विषय पर कविता में कवयित्री ने चर्चा की है।

सुशीला सामद हिन्दी की पहली आदिवासी कवयित्री है ,जिन्होंने छायावादी काव्य के समय में काव्य सृजन प्रारंभ की थी। छायावादी काव्य में प्रकृति,मनुष्य और प्रकृति का मानवीकरण जैसे कई विशेषताएँ विद्यमान हैं। सुशीला सामद की कविताओं पर उस युग की प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा है। किन्तु उस समय में स्त्री लेखन को,विशेषकर आदिवासियत को स्वीकार करने में हिन्दी काव्य जगत तैयार नहीं था। इस समय महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे कवयित्रियाँ कविताएँ लिख रही थी ,किन्तु जानबूझकर सुशीला सामद की उपेक्षा की गई और उनकी कविताएँ अप्रासंगिक बनकर आदिवासी काव्य जगत तक सीमित रह गई। 2017 में प्रसिद्ध आदिवासी आलोचक वंदना टेटे ने उनकी कविताओं को संकलित करके पुनः प्रकाशित किया,इसमें उनकी 43 कविताएँ शामिल हैं। सुशीला सामद की कविताएं महादेवी वर्मा की तरह विरहानुभूति से ओतप्रोत हैं। इनकी कविताओं में प्रकृति की विरहव्यथा का चित्रण हुआ है,जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य ही नहीं बल्कि प्रकृति भी संवेदनाओं से युक्त है। प्रकृति की विरह वेदना कवयित्री के शब्दों में इसी प्रकार है –

“प्रकृति आज क्यों दिन बनी है,
क्यों दिखती है दुखी मलीन ?
रूप कहाँ उसका वह भागा,
जो होता था नित्य नवीन ?” 10

(शिशिर-समीर,सुशील सामद)

आदिवासी कवियों की कविताएँ आदिवासी जीवन का ही नहीं बल्कि अपने सहजीवियों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि का भी परिणाम है। आदिम जीवन में और आदि दर्शन में प्रकृति ही उनके जीवन का मार्गदर्शक है। इसलिए वे आडंबरपूर्ण जीवन से भी ज़्यादा हरियाली को पसंद करते है। प्रकृति की पूजा से वे उस आत्मा को प्राप्त करते है जहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं बल्कि समस्त प्राणी एक ही तत्व के भिन्न-भिन्न बिन्दू होते हुए भी एक ही रस्सी से बंधे है। सारांश यह है कि प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए

दोनों की सामाजिक उपस्थिति का होना अनिवार्य है। इस अर्थ में यह सामाजिक उपस्थिति की ही कविता है। जिसमें मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ऊपर थोपी जा रही स्वार्थ और संवेदनहीनता का नकार मुख्यरूप से उभरकर आयी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कवि मन जनि मन – वंदना टेटे (सं),राधाकृष्ण प्रकाशन - 2019,पृ. 89
2. कवि मन जनि मन – वंदना टेटे (सं),राधाकृष्ण प्रकाशन - 2019,पृ. 32
3. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.32
4. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.66
5. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.15
6. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.106
7. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.108
8. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.121
9. कलम को तीर होने दो – रमणिका गुप्ता (सं) ,वाणी प्रकाशन - 2015,पृ.191
10.प्रलाप – वंदना टेटे (सं),प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन - 2017,पृ.100